● श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ●

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥	सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष ११ { गौराब्द ४८०, मास—त्रिविक्रम १०, वार—क्षीरोदशायी, शनिवार, ३० वैशाख, सम्वत् २०२३, १४ मई, १९६६ } संख्या १२

श्रीश्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम्

श्रील रूप गोस्वामी विरचितम्

[श्रीश्रीगान्धर्विकायै नमः]

वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे, मत्तद्विपप्रवर - कौतुकविभ्रमेण ।
सन्दर्शयस्व युवयोर्वदनारविन्द - द्वन्द्वं विधेहि मयि देवि कृपां प्रसीद ॥१॥

हा देवि काकुभरगद्गदयाद्य वाचा, याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्त्तिः ।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा, गान्धर्विके निजगणे गणनां विधेहि ॥२॥

श्यामे रमारमण - सुन्दरतावरिष्ठ, - सौन्दर्यमोहित-समस्तजगज्जनस्य ।
श्यामस्य वामभुजबद्धतनुं कदाहं, त्वामिन्दिराविरलरूपभरां भजामि ? ॥३॥

त्वां प्रच्छदेन मुदिरच्छविना पिधाय, मंजीरमुक्तचरणांच विधाय देवि ।
कुंजे व्रजेन्द्रतनयेन विराजमाने, नक्तं कदा प्रमुदितामभिसारयिष्ये ? ॥४॥

कुंजे प्रसूनकुलकल्पितकेलितल्पे, संविष्टयोर्मधुरनर्मविलासभाजोः ।
लोकत्रयाभरणयोश्चरणाम्बुजानि, सम्वाहयिष्यति कदा युवयोर्जनोऽयम् ? ॥५॥

त्वत् कुण्डरोधसि विलासपरिश्रमेण, स्वेदाम्बुचुम्बिवदनाम्बुरुहश्रियौ वाम् ।
वृन्दावनेश्वरि कदा तरुमूलभाजौ, संवीजयामि चमरीचयचामरेण ? ॥६॥
लीनां निकुंजकुहरे भवतीं मुकुन्दे, चित्रैव सूचितवती रुचिराक्षि नाहम् ।
भुग्नां भ्रुवं न रचयेति मृषारुषं त्वा, - मग्रे व्रजेन्द्रतनयस्य कदानुनेष्ये ? ॥७॥
वाग्युद्धकेलिकुतुके व्रजराजसूनुं, जित्वोन्मदामधिकदर्प विकासिजल्पाम् ।
फुल्लाभिरालिभिरनल्पमुदीर्यमाण,-स्तोत्रां कदा नु भवतीमवलोकयिष्ये ? । ८॥
यो कोऽपि सुष्ठु वृषभानुकुमारिकायाः, सम्प्रार्थनाष्टकमिदं पठति प्रपन्नः ।
सा प्रेयसा सह समेत्य धृतप्रमोदा, तस्य प्रसादलहरीमुररी करोति ॥९॥

अनुवाद—

हे वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिके ! श्रीकृष्ण और तुम दोनों श्रीवृन्दावनके केलि-कुञ्जमें मदमत्त मातंग की भाँति परमानन्दसे सदा-सर्वदा विहार करते हो, अनुग्रहपूर्वक मेरे ऊपर प्रसन्न होकर तुम दोनोंके श्रीमुखारविन्दोंका एक बार भी दर्शन कराओ ॥१॥

हा देवि ! हा गान्धर्विके ! मैं अतिशय मूढ़ हूँ। मैं इस समय भूमि पर दण्डकी भाँति पतित होकर अत्यन्त गिड़गिड़ा कर एवं गद्-गद् वाणीसे तुम्हारे पास (चरणोंमें) प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुम प्रसन्न होकर मुझे भी अपने परिकरोंमें स्थान दो—मुझे भी अपनी दासी बना लो ॥२॥

हे श्रीमति राधिके ! श्रीरमा-रमण—श्रीमन्नारायणसे भी अधिक अपने सौन्दर्य द्वारा त्रिभुवनको विमोहित करनेवाले श्रीश्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वाम भागमें उनकी (श्रीकृष्णकी) बाँयी भुजा द्वारा आबद्ध होकर लक्ष्मीसे भी अधिक रूपवती तुम विराजमान हो रहो हो; इस प्रकार युगल मूर्त्तिकी सेवा मैं कब प्राप्त करूँगी ? ॥३॥

हे देवि ! मेरा ऐसा कब शुभ दिन होगा जब मैं तुम्हारी सखी होनेका सौभाग्य प्राप्त कर, नवीन मेघके समान नीले वस्त्रोंसे अपने श्रीअंगको आच्छादित की हुई तथा श्रीचरणकमलोंसे नूपुरोंको उतारी हुई अतिशय प्रसन्न चित्तवाली अभिसारिका तुमको रातके समय निकुञ्जमें विराजमान श्रीकृष्णके समीप अभिसार कराऊँगी ? ॥४॥

हे देवि ! त्रिभुवनके भूषणस्वरूप तुम दोनों जब (वृन्दावनके मधुर) निकुञ्जमें नाना प्रकारके (सुगन्धित) पुष्पोंसे रचित शैय्या पर शयन कर विविध प्रकारसे मधुर - मधुर नर्म विलास कर रहे होंगे और मैं उस समय तुम युगलके चरणकमलों की सेवा करूँगा, अहो ! मेरा ऐसा कब सौभाग्य होगा ? ॥५॥

हे वृन्दावनेश्वरि ! मेरा कब ऐसा सौभाग्य उदित होगा, जब स्मर विलासके परिश्रमके कारण तुम दोनोंके मुख-कमल घर्मजलसे आर्द्र होने पर क्लान्ति दूर करनेके लिये तुम्हारे कुण्ड (श्रीराधाकुण्ड) के तटवर्त्ती किसी (सघन छायावाले, वृक्षके नीचे तुम दोनों बैठ कर विश्राम कर रहे होंगे, तब मैं वैसी दशामें तुम दोनोंको प्रेमपूर्वक चामरद्वारा वीजन करूँगी ॥६॥

हे सुलोचने ! मेरा ऐसा सौभाग्यपूर्ण दिन कब होगा, जब तुम निकुञ्जके किसी गुप्त स्थानमें छिप जाने पर श्रीकृष्ण किसी प्रकार यह जान कर कि तुम यहीं छिपी हुई हो, तुम्हारे निकट गमन करेंगे, उस समय तुम (श्रीराधिका) मेरे प्रति सन्देह करके (मेरे प्रति भृकुटि तान कर क्रोधपूर्वक) कहोगी कि तुमने ही श्रीकृष्णको यह बतला दिया कि 'मैं यहाँ हूँ।' तब मैं तुमसे यह कहूँगी कि मैंने नहीं, चित्रा सखीने ऐसा किया है, अतएव तुम मुझ पर न तो भृकुटी ही तानो और न व्यर्थ ही क्रोध करो (मेरा तनिक भी दोष नहीं है)—इस प्रकारके वचनोंसे श्रीकृष्णके समीप ही तुझसे प्रार्थना करूँगी ? ॥७॥

जब तुम वाक् युद्धमें श्रीकृष्णको पराजित करके आनन्दसे भरकर दर्पवशतः अधिकाधिक वाक्जाल का विस्तार कर रही होगी, उस समय तुम्हारी प्रिय सखियाँ आनन्दित होकर "राधाकी जय", "राधाकी जय" इन उक्तियोंसे तुम्हारा स्तव करेंगी, ऐसी अवस्थामें मैं कब तुम्हें (आँखें भरकर) देखूँगी ॥८॥

जो कोई वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाके इस सम्प्रार्थनाष्टकका श्रद्धापूर्वक पाठ करते हैं, श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके साथ शीघ्र ही प्रसन्न होकर उसके निकट आगमन कर उसे अपना लेती हैं।

अकृत्रिम आचार और आचार्य

श्रीरूप गोस्वामीकी श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की वन्दना

ॐ नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेमप्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

इस श्लोकका पाठ कर एकदिन श्रीरूप गोस्वामी ने प्रयागके दशाश्वमेध घाटमें श्रीगौरसुन्दरकी चरण वन्दना की थी—हे कृष्ण ! ऐसे आपको नमस्कार है, जिनका नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' है, रूप–'गौर' है, गुण–'महावदान्यता' है और लीला–'कृष्णप्रेम-प्रदान' है। यहाँ श्रोता स्वयं श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु थे और वक्ता श्रीरूप गोस्वामीजी थे।

दैन्यछलसे दांभिक श्रोताके श्रवणाभिनयका कुफल ज्ञापन

तीसरे मुझ जैसे एक दांभिक व्यक्तिने इस बात को सुना। श्रीकृष्णचैतन्यदेव अहंकार-शून्यता प्रकाश कर रहे हैं। वे कौन हैं ? उनकी बात मैं कह रहा हूँ। वे कहते हैं—

"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥"

यदि कोई महाप्रभुजीके पास आकर कहता—"आप ही व्रजेन्द्रनन्दन हैं", तो वे तुरन्त अपने कानों को बन्द कर लेते। वे कहा करते–"कृष्णको 'कृष्ण' कहना चाहिये, मैं तो क्षुद्र जीव हूँ; मुझको कृष्ण कहना उचित नहीं है।" हरिकीर्त्तन किनके द्वारा संभव है ? जिनमें ये चार गुण पाये जाय, वे ही हरिकीर्त्तन कर सकते हैं–(१) तृणादपि सुनीचता। तृण गो-गर्दभ - मानव और सभी व्यक्तियों द्वारा पददलित होता है। अतएव मैं उससे भी छोटा हूँ—

ऐसी बुद्धि होनी चाहिये । जगतमें जितने भी अहं-कारी लोग हैं, वे यदि निष्कपट होकर अपनेको 'तृणादपि सुनीच' समझें, तभी उनके मुखसे श्री कृष्णनामका उच्चारण हो सकता है।

महासौभाग्यवान कौन है ?

श्रीकृष्णनाम उच्चारण करनेवाले व्यक्ति ही महासौभाग्यवान् हैं । श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

"एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥"
(भा २।१।११)

अर्थात् हे राजन् ! जो व्यक्ति संसारसे निर्वेद-प्राप्त कर एकान्त भक्ति चाहते हैं, जो स्वर्ग मोक्षादि की कामना करते हैं, अथवा जो आत्माराम योगि-पुरुष हैं—इन सभी के लिये ही हरिके नाम-गुणका पुनः पुनः श्रवण कीर्त्तन और स्मरण—इन तीनोंको परम साध्य और साधन कहकर पूर्व आचार्योंने निर्णय किया है ।

हरिकीर्त्तनकारीके अन्यान्य गुण

(१) हरिकीर्त्तनकारीका एक और गुण है—(२) परम सहिष्णुता । तीसरा गुण है (३) अमा-नित्व । कीर्त्तनकारी निरभिमानी अर्थात् वे अमानी हैं, वे किसी प्रकारका जड़ीय अभिमान नहीं रखते। चौथा गुण है—(४) मानदत्व ।

श्रीगौरसुन्दरके आदर्शका रहस्य

निखिल विनयाधारके आदर्श-प्रदर्शनकारी श्री गौरसुन्दरने—सर्वापेक्षा अधिक विनय-शिक्षा-दाता श्रीगौरसुन्दरने, श्रीरूप गोस्वामीजीके मुखसे यह श्लोक सुना था—

"नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥"

—सभी बुद्धिमान कहे जानेवाले मनुष्योंने जिस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) को सर्वोत्तम प्रयोजन माना है, उस चतुवर्गको भी धिक्कार देने वाला 'पञ्चमपुरुषार्थ' या 'कृष्णप्रेम' है । उसी कृष्णप्रेमके प्रदाता श्रीचैतन्य महाप्रभु हैं । वे 'कृष्ण' होकर भी कृष्णप्रेमके प्रदाता हैं । उनका नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' है । वे ही गौराङ्गदेव महावदान्य हैं । जिन गौरसुन्दरने जगतको 'अमानी' 'मानद' होनेका उपदेश दिया था, उन श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीरूप-गोस्वामीजीके मुखसे अपनी स्तुति किस प्रकार सुनी थी ?

अकृत्रिम 'तृणादपि-सुनीच' महाभागवतके प्रति मत्सरयुक्त दांभिकोंका दर्शनविवर्त्त

"जगाइ माधाइ हैते मुइ से पापिष्ठ ।
पुरीषेर कीट हैते मुइ से लघिष्ठ ॥
मोर नाम शुने जेइ, तार पुण्य क्षय ।
मोर नाम लय जेइ, तार पाप हय ॥"

—इस तरहके एक निघृण्य अधमाधम व्यक्ति को सम्मान करनेका भार लिया है—एक आभि-जात्य-सम्पन्न, प्रवीण अथवा सर्वोत्तम व्यक्तिने । उनकी तो सर्वोत्तमता है । किन्तु ऐसा पशु कौन है जो ऐसे सर्वोत्तम व्यक्तिके पास रहकर अपनी स्तुति सुने ? अत्यन्त असत्—पाप-परायण व्यक्ति ही ऐसा कर सकता है । हमने उस प्रकारके एक अभि-

योग वरण करनेका भार ग्रहण किया है। सभी व्यक्तियोंने साधारण आसन ग्रहण किया है, परन्तु मुझे एक ऊँचा आसन दिया गया है। सब लोगों को दिखाया जा रहा है–"ZOO-Garden (चिड़िया खाने) के एक बड़े जन्तुको देखो–कैसा दांभिक है! ऐसे मूर्ख–ऐसे असत्–ऐसे एक प्रकाण्ड पशुको कभी देखा है! –कोई गलेमें पुष्प-माला दे रहा है! कैसी स्तुति—बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे शब्द विशेषण—आत्म-जयगान सुन रहे हैं—बैठे बैठे अपने कानसे! मनही मन आनन्द हो रहा है—महाप्रभुकी शिक्षाके विरुद्ध कार्य हो रहा है।" इस प्रकारका पशु-मूर्ख-दांभिक किस प्रकार ऐसे पशुत्वसे बच सकता है ?

"मेरी आज्ञासे गुरु होकर इस देशको तारो"

मैं एक प्रधान मूर्ख हूँ। 'दांभिक' कहकर कोई मुझे सदुपदेश नहीं देते। जब मुझे किसीने सदुपदेश नहीं दिया,तब मैंने ही महाप्रभुजीको प्रकाशित किया। तब मैंने सोचा कि अपना भार उनके ऊपर ही छोड़ दूँ—देखूँ वे मुझे क्या आदेश देते हैं। श्रीगौर-सुन्दर मुझे आदेश दिया—

"आरे देखो तारे कहो कृष्ण-उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हइया तारो एइ देश॥
इहाते ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एइ ठांइ पाबे मोर सङ्ग॥"

"तृणादपि सुनीचता" ही जिनकी एक मात्र शिक्षा है, वे कहते हैं—

"आमार आज्ञाय 'गुरु' हइया तारो एइ देश।"

यहाँ स्वयं महाप्रभु आदेशकर्त्ता हैं—उनका आदेश—मेरी ही तरह 'गुरुगिरी' करो।' जिन्हें देखो उनसे यही बात कहो। चैतन्यदेव कहते हैं—उन्हें "आमार आज्ञाय गुरु हइया तारो एइ देश"–यह बात कहो। लोगोंको उनकी बुद्धिहीनता से उद्धार करो।

'ना बाधिबे विषय-तरङ्ग-पाबे मोर सङ्ग'

इस बातको जो जो व्यक्ति सुनता, वह हाथ जोड़कर कहता—मैं एक पाषण्ड-अधम हूँ, मैं "गुरु" बनूँगा ? आप भगवान हैं, आप जगद्गुरु हैं, आप 'गुरु' हो सकते हैं। उसके उत्तरमें महाप्रभु कहते—

"ताहाते ना बाधिबे तोमार विषय-तरङ्ग।
पुनरपि एइ ठांइ पाबे मोर सङ्ग॥"

अर्थात् इस कार्यमें तुम्हें विषय-तरंगें कोई बाधा नहीं देंगी। तुम पुनः यहाँ मेरा सङ्ग प्राप्त करोगे।

पूर्ण वस्तुमें कोणज-हेयता नहीं है

वैकुण्ठ-राज्यमें कृष्ण विस्मृतिका अवसर नहीं है। जहाँ १८० डिग्री या ३६० डिग्रीसे कम है, वहीं कोण (angle) की उत्पत्ति है। किन्तु समतल भूमिमें या ३६० डिग्रीमें (angular) कोणज दर्शन नहीं है। भगवान या भगवद्वस्तुको यदि ३६० डिग्रीके साथ तुलना की जाय, तो उनमें किसी प्रकारकी कोणज हेयता नहीं रह सकती।

विषयी होना उचित नहीं है

'विषय' हमें कष्ट देते हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द रूपी पाँच विषय हमें विचलित कर मोहरूपी गड्ढेमें डाल देते हैं। अतएव 'विषयी' होना उचित नहीं है।

"निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य ।
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ॥
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च ।
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥"
(चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८।२४)

(श्रीचैतन्यदेवने कहा—भवसागरको सम्पूर्णरूप से पार करनेकी जिनकी इच्छा है, ऐसे भगवद्-भजनोन्मुख निष्किञ्चन व्यक्तियोंके लिये विषयी और स्त्रियोंका दर्शन विषभक्षणसे भी अत्यन्त अहितकर है।)

योषा-विषय, योषाधिपतित्वाभिमानी विषयी

जो व्यक्ति भगवद्भजन करना चाहते हैं, वे विषयीका दर्शन न करें। बाहरी जगतके आंशिक रूपदर्शनमें भगवद्रूपदर्शन आच्छादित है। विषय या इन्द्रिय-ग्राह्य व्यापार जब उपस्थित होता है, तब ही भगवद्-विस्मृति होती है, और भगवद्भक्तों में 'गुरुत्व' बुद्धि नहीं रहती। जो व्यक्ति भगवानकी सेवा करनेके लिये भक्तिपथमें अग्रसर हो रहे हैं, वे विषयीका दर्शन न करें—न करें। 'योषा' अर्थमें विषय है और योषाधिपतित्वका अभिमानी 'विषयी' है। योषित् संगी या योषित् संगीके संगी का दर्शन नहीं करना चाहिए। श्रीगौरसुन्दरने भव-रोगके चिकित्सकके रूपमें हमें शिक्षा दी है—योषित्-संगी का संग न करो—न करो।

विषय कवलित व्यक्ति 'गुरु' नहीं है

महाप्रभुजीने कहा है—

"आमार आज्ञाय 'गुरु' हइया तारो एइ देश।"
"भारत-भूमिते हैल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि करो पर-उपकार॥"

अर्थात् "हिंसा परित्यागपूर्वक जीवोंके प्रति दया करो। हिंसा करनेके लिये 'गुरुगिरि' न करना। स्वयं विषयमें डूबनेके लिये 'गुरुगिरि' न करो। किन्तु यदि तुम मेरे निष्कपट भृत्य बन सको, तो मेरी शक्ति प्राप्त करो। तब तुम्हें कोई भय न रहेगा।"

अकपट श्रौतपथानुसरणकारीको कोई भय नहीं है

मेरे लिये कोई भय नहीं है। मेरे गुरुदेवने अपने (उनके) गुरुदेवके निकट यह बात सुनी थी। इस लिये उन्होंने (मेरे गुरुदेवने) मुझ जैसे पाषण्ड व्यक्तिको भी ग्रहण किया है और मुझे कहा—

"आमार आज्ञाय 'गुरु' हइया तारो एइ देश।"

श्रौतप्रणालीमें गुरुपूजाकी महिमा कीर्त्तनकारी और शिष्यको गुरुपूजा-शिक्षादानकारी गुरुदेवमें तृणादपि सुनीचताकी अभावकल्पना प्राकृत साहजिक मर्कट मतवाद है

जिन्होंने श्रीगौरसुन्दरकी इस वाणीको नहीं श्रवण की है, वे ही कहते हैं—"किस प्रकारसे आत्मस्तुति सुन रहा है!" गुरु जब शिष्यको एकादशस्कन्धका उपदेश दे रहे हैं, तब न जाने उन्हें किस प्रकारकी 'पाषण्डता' का आचरण करना पड़ रहा है। "आचार्यं मां विजानीयात्" श्लोककी व्याख्या करते समय आचार्य क्या करेंगे? "आचार्य की कदापि अवमानना न करो। अपने समान

आचार्यको कभी भी नहीं समझना।" कृष्णकी ये सभी वाणी–जिनसे जीवोंका मङ्गल होगा, उन सब बातोंकी व्याख्या करनेके उपयुक्त आसन (आचार्य आसन) से वे क्या पालन करवायेंगे ? उन्हें उनके गुरुदेवने जो अधिकार दिया है—यदि वे उसका पालन न करें, तो गुर्वज्ञा रूपी नामापराधसे उनका पतन अवश्यम्भावी है—यद्यपि वे कितनी ही अच्छी व्याख्या क्यों न करें। जब गुरुदेव शिष्य को मन्त्र देते हैं, तब वे क्या शिष्यको यह नहीं कहेंगे कि इस मन्त्रके द्वारा 'गुरुपूजा' करो ? अथवा कहेंगे कि गुरुको कुछ जूता मारो या कुछ मार लगाओ ? "गुरुको कदापि असूया न करना चाहिये, 'गुरु' सर्वदेवमय हैं"—क्या ये सब बातें भागवत पढ़ते समय गुरुदेव शिष्यको नहीं कहेंगे ? "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ"—श्रीकृष्णमें जैसी परा भक्ति है, गुरुदेवमें भी जिसकी वैसी ही निष्कपट परा भक्ति है, उसीके निकट ही गोपनीय विषयोंका प्रकाश होता है—क्या गुरुदेव शिष्यको यह बात नहीं कहेंगे ? "आदौ गुरुपूजा"—सबसे पहले गुरुपूजा-कृष्णकी तरह ही गुरुकी भक्ति करना चाहिये—इस प्रकारसे गुरुकी उपासना की जाती है—ये सब बातें क्या गुरुदेव शिष्यको न कहकर पलायन करेंगे ?

महामुक्तोंकी सेवा-सर्वाङ्गसुन्दर विचार साधरण भ्रममें पतित मूर्ख व्यक्तियों द्वारा अनधिगम्य है

कोण (angle) में सम्पूर्णता - समतलता १८०° या ३६०° डिग्रीका अभावरूप हेयत्व है, किन्तु समतल भूमिमें–३६०° डिग्री वह हेयत्व नहीं है। मुक्त अवस्थामें हेयत्वरूप जड़ा-अवस्था नहीं रहती, इस बातको साधारण मूर्ख लोग समझ नहीं पाते।

"साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥"

अर्थात् निखिल शास्त्र जिन्हें साक्षात् श्रीहरिका अभिन्न विग्रह कहते हैं और साधु पुरुष भी जिन्हें उसी प्रकार जानते हैं, तथापि जो महाप्रभु भगवान के एकान्त प्रेष्ठ (प्रियतम) हैं, उन भगवानके अचिन्त्य-भेदाभेद प्रकाश-विग्रह श्रीगुरुदेवके पाद-पद्मोंकी मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ।]

गुरुमें अप्राकृत भगवदभिन्न भगवत्प्रियतम-बुद्धिके बिना शिष्य-संरक्षणमें और श्रीनाम-ग्रहणमें अयोग्यता

साक्षात् भगवानको जिस प्रकार जानना चाहिए, उसी प्रकार गुरुदेवको भी जानना चाहिये–कदापि किसी अंशमें कम न समझना चाहिये। सभी साधुपुरुष-सभी पण्डित व्यक्ति-समस्त वेदज्ञ ब्राह्मण—इन सभी व्यक्तियोंका कर्त्तव्य है कि वे गुरुदेवको भगवानके समान जानें, पूजा करें और सेवा करें। अन्यथा वे अपने शिष्यत्वसे भ्रष्ट हो जायेंगे।

" किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे गुरोःश्रीचरणारविन्दम्"

महान्त गुरुदेवको भगवानसे अभिन्न–भगवानकी प्रकाशमूर्ति न जाननेसे कदापि भगवानका नाम मुखसे उच्चारित न होगा। श्रुतियोंमें कहते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् श्रुतिका मर्म (गोपनीय ज्ञान) वही महात्मा पुरुष जान सकता है जो श्रीगुरुदेव और भगवानको अभिन्न जानता है।

श्रीगुरुदेव सेवक-भगवान् या आश्रय-भगवान् हैं

"आमार प्रभुर प्रभु श्रीगौरसुन्दर।"
"यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥"

यह भी ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार सच्चिदानन्द भगवान् अपने ही शरीरके अपने ही हाथसे अपना ही पाँव खुजल रहे हैं। अर्थात् भगवान् स्वयं ही अपनी सेवा कर रहे हैं। भगवान्ने स्वयं ही अपनी सेवाकी शिक्षा देनेके लिये गुरुके रूपमें अवतार लिया है। मेरे गुरुदेव भी उसी प्रकार भगवान् से अभिन्न हैं—भगवान्के साथ एक देह हैं। भगवान् 'सेव्य-भगवान्' या 'विषय भगवान्' हैं, और गुरुदेव 'सेवक-भगवान् या 'आश्रय-भगवान्' हैं। मेरे गुरुदेवकी तरह भगवान्का प्रिय और कोई नहीं है। वे ही भगवान्के अत्यन्त प्रिय हैं। हमारे गुरुदेवने हमें यह उपदेश दिया है—

"न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
व्रजे राधाकृष्ण-प्रचुर-परिचर्यामिह तनु।
शचीसूनुं नन्दीश्वरपतिसुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्द-प्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः॥"

[अर्थात् हे मन ! वेद-प्रतिपादित धर्म ही हो या वेदनिषद्ध अधर्म ही क्यों न हो, तुम्हें उनके द्वारा कोई प्रयोजन नहीं है। इस जगतमें रहकर तुम अप्राकृत व्रजमें मन ही मन निवास कर श्रीराधाकृष्णकी प्रचुर परिचर्या (सेवा) करो। श्रीशचीनंदन श्रीगौरसुन्दरको नन्दीश्वरपतिके पुत्र (नन्दनन्दन) से अभिन्न और श्रीगुरुदेवको 'मुकुन्द-प्रेष्ठ' जानकर तुम निरन्तर उनका स्मरण करो]।

और भी कहा है—

"गुरौ गोष्ठे गोष्ठालिषु सुजने भूसुरगणे
स्वमन्त्रे श्रीनाम्नि व्रज नवयुवद्वन्द-शरणे।
सदा दंभं हित्वा कुरु रतिमपूर्वामतितरा-
मये स्वान्तर्भ्रातश्चटुरिरभियाचे धृतपदः।"

[अर्थात् हे मन ! गुरुमें, गोष्ठ (नवद्वीप, वैकुण्ठ, श्वेतद्वीप या वृन्दावन) में, गोष्ठवासियों (व्रज या नवद्वीपवासी वैष्णवों) में, सज्जनोंमें, ब्राह्मणोंमें, अपने गुरु-प्रदत्त मन्त्रमें, भगवानके नाममें और श्रीराधाकृष्णके चरणोंमें सदा दम्भका परित्याग कर अपूर्व और अत्यन्त प्रीति रखो। मैं तुमसे यह बार-बार चरणोंको पकड़कर निवेदन करता हूँ।]

कपटता सिद्धिका प्रतिबन्धक है

भोजन करते समय यदि मैं कपटता कर भद्रता की छलसे कम खाऊँ, तो उससे मेरा पेट न भरेगा। लोहारको यदि लोहा न दूँ—यदि कोई सवाल न समझकर मास्टरसे कहनेमें लज्जा मानूँ, तो मेरे कार्यकी सिद्धि नहीं होगी।

कपटता सुनीचता नहीं है

कहावत है कि "नाचते समय घूँघट काढ़नेसे काम नहीं चलता।" मैं गुरुका कार्य कर रहा हूँ, किन्तु मेरी 'जय' नहीं देना—ऐसा प्रचार करनेसे

अथवा दूसरे शब्दोंमें "मेरी खूब 'जय' देना", ऐसा विचार 'कपटता' को छोड़कर और कुछ नहीं है।

गुरु-गौराङ्ग कपटताके शिक्षक नहीं हैं

मेरे गुरुदेव अथवा श्रीचैतन्य महाप्रभुने ऐसी कपटताकी शिक्षा नहीं दी है। अत्यन्त सरलताके साथ भगवानकी सेवा करूँगा—भगवानके ही वाक्य मेरे गुरुदेव कहते हैं—मैं उसी वाक्यका सरलताके साथ पालन करूँगा, ऐसी बुद्धि होना आवश्यक है।

गुरुगौरशिक्षाका सरलतासे पालन करना ही कृष्णसेवा है

मैं मूर्ख लोगोंकी या हिंसा परायण व्यक्तियोंकी कोई भी बात सुनकर गुरुकी अवज्ञा नहीं करूँगा। जब श्रीगौरसुन्दरने मुझे आज्ञा दी है—"आमार आज्ञाय 'गुरु' हइया तारो एइ देश", तो मेरे गुरुदेवके निकट भी यही आज्ञा पहुँची है और उन्होंने पुनः मुझसे यही बात कही है। मैं उस आज्ञाका पालन करनेमें कोई कपटता नहीं रखूँगा। मूर्ख लोग—कपटी लोग या फल्गुत्यागियोंका आदर्श मैं नहीं लूँगा। मैं कपटताकी शिक्षा नहीं करूँगा। विषयी लोग, मत्सरयुक्त व्यक्ति, फल्गुत्यागी एवं स्वार्थ-पर व्यक्ति यह नहीं समझते कि किस प्रकार भगवानके भक्त लोग जगतके विषयों पर पदाघात कर भगवानकी सदा-सर्वदा निष्कपट रूपसे सेवा करते हैं।

कपट जड़प्रतिष्ठाकामी व्यक्तियोंका विवर्त्त

कपटी लोग (वैष्णवब्रुव लोग) मन ही मन जड़प्रतिष्ठासे युक्त होकर सोचते हैं कि गुरु किस प्रकार अपने शिष्योंकी स्तुति सुनते हैं। वैष्णवमात्र ही दूसरे वैष्णवोंको श्रेष्ठ समझते हैं। जब हरिदास ठाकुरजीने विनय-नम्र भाव प्रकाश किया, तब श्री महाप्रभुजीने कहा—"तुम पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ हो, पृथ्वीके शिरोमणि हो। तुम मेरे साथ भोजन करो। महाप्रभुजीने ठाकुर हरिदासजीका सच्चिदानन्द शरीर गोदमें लेकर वहन किया। रूपानुग-सम्प्रदाय में 'अमानी-मानद' धर्म सर्वदा ही वर्त्तमान है। जो व्यक्ति इसमें वैषम्य दर्शन करते हैं, वे दिवान्ध उल्लू सदृश हैं—अपराधी हैं।

आत्मदैन्यछलसे प्रकृतगुरु और शिक्षा द्वारा अकृत्रिम आचारका स्वरूप शिक्षादान

किन्तु मुझ जैसा चण्डाल, दांभिक, शुद्र, निघृण्य, असज्जन इस बातका विषय (उदाहरण) नहीं है। इसलिये मैं कहता हूँ—"यह मेरा सदाचार नहीं है—यह मानव जातिका कानून है—यह कानून गुरु-पारम्पर्यसे मेरे निकट उपस्थित हुआ है। यदि मैं इसको नहीं मानूँ तो गुरु आज्ञा पालन न करनेका दोष मुझे लगेगा और मैं श्रीगुरुपादपद्मोंसे विचलित हो जाऊँगा। यदि वैष्णवगुरुकी आज्ञा पालन करने के लिये मुझे 'दांभिक' होना पड़े, 'पशु' बनना पड़े, अथवा अनन्तकाल नरकमें ही क्यों न जाना पड़े, तो मैं अनन्तकालके लिये Contract (ठेका) लेकर उस नरकमें जाना चाहता हूँ। मैं गुरु-आज्ञाको छोड़कर अन्य हिंसा-परायण जगतके लोगोंकी बात नहीं सुनूँगा। यह तो क्या, गुरुको छोड़कर और किसीकी भी बात नहीं सुनूँगा। जगतके अन्यान्य सभी लोगोंकी चिन्तास्रोतको गुरुपादपद्मोंके बलसे

मुक्केके आघातसे विदूरित कर दूँगा—मैं ऐसा दांभिक हूँ। मेरे गुरुपादपद्म-परागकी एककरणा मात्र छोड़नेसे तुम लोग जैसे कोटि-कोटि लोगोंका उद्धार होगा। ऐसा कोई भी पण्डित संसारमें नहीं हैं, ऐसा कोई भी सद्विचार चौदह भुवनमें नहीं है, कोई मनुष्यादेवता नहीं है जो कि मेरे गुरुदेवके पाद-पद्मोंकी धूलिकी एक करणसे भारी हो सकें।"

श्रीगुरुदेव ही अकपट अहिंसक अमन्दोदय-दयावान पुरुष हैं

गुरुदेव मुझसे हिंसा नहीं करते। जो मेरी हिंसा करते हैं, मैं उनकी बातें सुननेके लिये कदापि राजी नहीं हूँ—उन्हें मैं गुरु कदापि नहीं करूँगा। श्री-चैतन्य महाप्रभुजीसे श्रीदामोदरस्वरूपजी करते हैं—

"हेलोद्धूलित-खेदया विशदया प्रोन्मीलदामोदया
शाम्यच्छास्त्रविवादया रसदया चित्तार्पितोन्मादया।
शश्वद्भक्तिविनोदया स-मदया माधुर्यमर्यादया
श्रीचैतन्यदयानिधे, तव दया भूयादमन्दोदया।"

[अर्थात् हे दयाके सागर श्रीचैतन्यदेव, आपकी कृपाके उदयसे चित्तखेद-रूप धूलि हृदयसे अनायास उड़ जाती है, अतएव हृदय निर्मल हो जाता है। उस समय हृदयमें कृष्णसेवा-जनित परमानन्दका प्रकाश होता है। शास्त्र समूहोंकी व्याख्या भेदसे चित्तमें विवादसमूह उदित होकर नाना वाद-प्रति-वाद करते हैं। आपकी कृपा प्राप्त करनेसे ही कृपा प्राप्त हृदय भगवद्रसमें उन्मत्त हो जाता है। इसलिए शास्त्रविवाद वहाँ शान्ति लाभ करते हैं। आपकी कृपा निरन्तर भक्तिविनोदन करती रहती है अर्थात् जीवोंको स्व-स्वभावमें प्रेरण कराती है। आपकी कृपा हृदयको कृष्णेतर-तृष्णारहित कराकर जीवों को अप्राकृत माधुर्य-रसकी चरम सीमापर पहुँचा देती है। हे दयानिधि श्रीचैतन्यदेव, आपकी वही अमन्दोदयदया मेरे हृदयमें उदित हो।]

मूढ़लोगोंको अकपट विनय-शिक्षा देनेके लिये श्रीचैतन्यदेवकी अमानित्वलीला है, कपटता शिक्षा देनेके लिये नहीं

श्रीस्वरूपदामोदरजीकी इस प्रशंसाको श्रीमहा-प्रभु चैतन्यदेव सुन रहे हैं। मूढ़ लोगोंको विनयकी शिक्षा देनेके लिए कभी-कभी वे ऐसा कह उठते—"मुझे ऐसा सम्बोधन नहीं करना चाहिये।" किन्तु यह कपटताकी शिक्षा देनेके लिये नहीं है।

मत्सरयुक्त मूढ़लोगोंके सन्देहकी कैफियत

मूढ़लोगोंमें स्वाभाविक सन्देह बुद्धि रहती है। उसीके उत्तरमें मेरी कैफियतका थोड़ासा अंश आज मैंने कहा। एकदिनमें ही आप लोगोंके समय पर इतना अधिक हस्तक्षेप करनेका मुझे अधिकार नहीं है।

महाभागवत श्रीगुरुदेवकी अमानी मानद-लीला दर्शन कर उन्हें वैसा अयोग्य समझना भयङ्कर अपराध है

मैंने गुरुदेव निकट शिक्षा पाई है—

"जगाइ माधाई हैते मुइ से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुइ से लघिष्ठ॥"

मैं पुरीष (पायखाने) का कीड़ा तो हूँ, परन्तु मेरे गुरुदेव अपने (उनके) गुरुके आदेशसे महाप्रभु के आदेशानुसार जब ऐसा विनय-आचरण करते हैं, तो कोई उन्हें वैसा अयोग्य समझकर उनके चरणोंमें अपराध न करें, यही मेरी प्रार्थना है।

आत्मदैन्य और उपसंहार

सबसे अधिक क्लिष्ट (कठोर) मुझ जैसे व्यक्ति के प्रति आप लोग दया करें, क्योंकि आप लोग उदार हैं। आप लोगोंने कितने ही लोगोंको क्षमा किया है; अतएव मुझ जैसे सबसे अधिक दांभिकको भी क्षमा कर मेरा मङ्गल करेंगे।

"वांछाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥"

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(गताङ्क से आगे)

श्रीकृष्णपार्षद

१. वैकुण्ठके भक्तोंमें कौन-कौनसे भेद हैं ?

"वैकुण्ठमें पाँच प्रकारके भक्तोंका नित्य अवस्थान है—(१) ज्ञानभक्त (२) शुद्धभक्त (३) प्रेमभक्त (४) प्रेमपरभक्त और (५) प्रेमातुर भक्त। मुक्तिके प्रति तुच्छ बुद्धिके साथ भगवत्पादपद्मोंमें भक्ति महिमादि-ज्ञानमिश्र नौ प्रकारकी सेवा-भक्तिविशिष्ट भरतादि भक्त ही ज्ञानभक्त हैं। कर्म-ज्ञान-वैराग्य-शून्य केवला भक्तिकी कामना करनेवाले अम्बरीषादि ही शुद्धभक्त हैं। प्रीतिके साथ सेवामात्र-वासनायुक्त श्रीहनुमानादि प्रेमभक्त हैं। भगवत्कृपाजनित विशुद्ध प्रेमोत्पादित तद्दर्शनोत्सुक नर्मसख्य सौहृदादि-शृङ्खलाबद्ध अर्जुनादि ही प्रेमपरभक्त हैं। सर्वदा *प्रेससम्पत्तिविह्वल विचित्र प्रेम - सम्बन्धाकृष्टाशय* श्रीउद्धवादि ही प्रेमातुर भक्त हैं।"

—बृ. भा. तात्पर्यानुवाद

२. क्या वैकुण्ठमें नारायणके माता-पिता हैं ?

"वैकुण्ठमें नारायणके नित्य माता - पिताकी संभावना नहीं है; क्योंकि ऐसा होना वैकुण्ठके ऐश्वर्यके विरुद्ध है। इतना होनेपर भी नन्द-यशोदादिकी प्रेमातुर गतिकी चिन्ता करने पर भक्तगण प्रेमसे पुलकित हो जाते हैं।"

३. शुद्धव्रजानुगत और नवद्वीपानुगत भक्तोंका कहाँ वास होता है ?

"रसभेदसे गोलोकमें भक्तोंकी पृथक् स्थिति कृष्णकी अविचिन्त्य शक्ति द्वारा सम्पन्न हुई है। शुद्धव्रजानुगत भक्त कृष्णलोकमें और शुद्धनवद्वीपानुगत भक्त गौरलोकमें अवस्थान करते हैं। व्रज और *नवद्वीपके ऐक्य-सेवागत भक्त कृष्णलोक और गौर*-लोकमें युगपत् सेवा-सुख लाभ करते हैं।"

—अ. स. ५।५

४. क्या चिद्विलासगत भक्त ऐश्वर्यमुग्ध हो जाते हैं ?

"चिद्विलासगत भक्त भगवन्माधुर्यमें सर्वदा इतने अधिक मुग्ध रहते हैं कि ऐश्वर्यके रहने पर भी वह उनके निकट प्रतीत नहीं होता। यह भाव अविद्यारूपा माया-भावके अन्तर्गत नहीं है।"

—बृ. स. ४।१४

शक्ति-तत्त्व

१. शक्ति और शक्तिमान् क्या पृथक् हैं ?

"पृथक् होकर भी वस्तु और वस्तुशक्ति एक हैं; पार्थक्य और ऐक्य—युगपत् सिद्ध हैं। इसलिये वस्तु और वस्तुशक्तिका स्वभाव अचिन्त्यभेदाभेदात्मक है।" —श्री म. शि. ४ र्थ प.

२. शक्तिका अद्वयत्व और अनन्तत्व कैसे युक्तिसंगत है ?

"नौका बनाते समय निर्माताका जो भाव होता है, गृह-निर्माण करते समय वह भाव न रहकर दूसरे भावका उदय होता है, यह स्वीकार करना ही होगा। बनानेका सामर्थ्य एक ही शक्ति है, केवल भावोंका ही विभिन्न रूप देखा जाता है। अतएव शक्तिके अद्वयत्व और आनन्त्यके सम्बन्धमें कोई विरोध नहीं है।" —त. सू. ६ वाँ सूत्र

३. शक्ति स्त्रीरूपा क्यों हैं ?

"शक्ति पराधीना हैं, इसलिये स्त्रीरूपा होकर शक्तिमान् चैतन्य पुरुषके साथ आलिङ्गनके योग्य हुई हैं। तत्त्वको यथासम्भव सहज और मनोगम्य बनानेके लिए ब्रह्मर्षियोंने आलङ्कारिक भाषाका प्रयोग किया है। वस्तुतः राधाकृष्ण एक ही परम तत्त्व हैं।" —त. सू. ७ वाँ सूत्र

४. अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था शक्तिका स्वरूप और कार्य क्या है ?

भगवानकी अन्तरङ्गा या स्वरूप-शक्तिकी अणु-प्रकाश स्थानीय शक्ति ही तटस्था या जीव शक्ति है और छाया प्रकाश-स्थानीय शक्ति ही बहिरङ्गा या माया शक्ति है। जीवशक्तिके अन्वय या अनुवृत्तिके द्वारा जैवजगत् उत्पन्न हुआ है। मायाशक्तिके अन्वय द्वारा जड़जगत हुआ है। जीवके व्यतिरेक या व्यावृत्तिबुद्धि अथवा मिथ्याभिमानरूप विवर्त्तके द्वारा जड़ जगत्से सम्बन्ध हुआ है।"

—'सूचना', श्री भा. मा. १।१

५. शक्तिके कौन कौनसे विशेष विक्रम हैं ?

"शक्तिके विशेषरूप विक्रम तीन प्रकारके हैं—सन्धिनी विक्रम, सम्बिद् विक्रम और ह्लादिनी विक्रम। सन्धिनी विक्रमसे समस्त सत्ता प्रकट हुई हैं। शरीर सत्ता, शेषसत्ता, कालसत्ता, संगसत्ता, उपकरणसत्ता आदि सभी सत्तामात्र ही सन्धिनी द्वारा निर्मित (प्रकटित) हैं। सम्बित्-विक्रमसे समस्त सम्बन्ध जातीय भाव प्रकट हुए हैं। ह्लादिनी विक्रमसे समस्त रसोंका प्राकट्य हुआ है। सत्ता और समस्त सम्बन्ध भावोंका शेष प्रयोजन ही 'रस' है। जो व्यक्ति विशेष नहीं मानते, अर्थात् निर्विशेषवादी हैं, वे अरसिक हैं। विशेष ही रसका जीवन है।"

—प्रे. प्र. ६ म प्र.

६. स्वरूप शक्तिको वेदमें किस नामसे अभिहित किया किया गया है ?

"श्रीकृष्णकी विचित्रा स्वरूप-शक्तिको वेदमें 'शबल' नामसे पुकारा गया है।"

—श्री म. शि. ३ रा प.

७. सन्धिनी शक्तिका क्या कार्य है ?

"सा शक्तिः सन्धिनी भूत्वा सत्ताजातं वितन्यते।
पीठसत्तास्वरूपा सा वैकुण्ठरूपिणी सती॥
कृष्णाद्याख्याभिधा सत्ता रूपसत्ता कलेवरम्।
राधाद्या संगिनी-सत्ता सर्वसत्ता तु सन्धिनी॥
सन्धिनीशक्तिसम्भूताः सम्बन्धा विविधा मताः।
सर्वाधारस्वरूपेयं सर्वाकारा सदंशका॥

अर्थात् सन्धिनीके द्वारा समस्त सत्ताका उदय हुआ है। पीठसत्ता, अभिधासत्ता, रूपसत्ता, संगिनी सत्ता, सम्बन्धसत्ता, आधारसत्ता और आकार इत्यादि समस्त सत्ता ही सन्धिनीसे उत्पन्न हुए हैं। उन पराशक्तिके तीन प्रभाव हैं—चित्प्रभाव, जीवप्रभाव और अचित्प्रभाव। चित्प्रभाव स्वगत है और जीव तथा अचित्प्रभाव विभिन्न-तत्त्वगत हैं। शक्तिके प्रभावानुसार सभी भावोंका पृथक्-पृथक् विचार किया गया है। चित्प्रभावगत परा शक्ति की सन्धिनी-भावगत पीठसत्ता ही वैकुण्ठ है। उनकी अभिधा सत्तासे कृष्णादि नाम प्रकट हुए हैं। रूप-सत्तासे कृष्ण-कलेवर, संगिनी और रूप सत्ताके मिश्रभावसे श्रीराधादि प्रेयसियाँ प्रकट हुई हैं, सन्धिनी शक्तिसे समस्त सम्बन्धोंका उदय होता है; सदंश-स्वरूप सन्धिनी ही सर्वाधार सर्वाकार स्वरूप हैं।"

—कृ. स. २।३-५

८. सम्बित् शक्तिका क्या कार्य है ?

"सम्बिद्भूता परा शक्तिर्ज्ञान-विज्ञानरूपिणी।
सन्धिनी निर्मिते सत्त्वे भावसंयोजिनी सती॥
भावाभावे च सत्तायां न किञ्चिदपि लक्ष्यते।
तस्मात्तु सर्वभावानां सम्बिदेव प्रकाशिनी॥
सन्धिनीकृतसत्त्वेषु सम्बन्ध-भावयोजिका।
सम्बिद्रूपा महादेवी कार्याकार्यविधायिनी।
विशेषाभावतः सम्बित् कार्याकार्यविधायिनी।
विशेषसंयुता सा तु भगवद्भक्तिदायिनी॥

अर्थात् सम्बिद्भावगता पराशक्ति ही ज्ञान और विज्ञान-रूपिणी हैं। उनके द्वारा सन्धिनी निर्मित सब सत्त्वोंमें समस्त भावोंका प्रकाश होता है। सब भाव नहीं रहनेसे सत्ताका अवस्थान जाना नहीं जाता। अतएव सम्बित् द्वारा समस्त तत्त्व ही प्रकाशित होते हैं। चित्प्रभावगत सम्बित् द्वारा वैकुण्ठस्थ सभी भावोंका उदय हुआ है। कार्याकार्य विधानकर्त्री सम्बिद्देवीने ही वैकुण्ठस्थ समस्त सम्बन्धभावोंकी योजना की है। शान्त, दास्य आदि रस और इन सब रसगत सात्त्विक कार्य सभी सम्बित् द्वारा व्यवस्थापित हुए हैं। विशेष-धर्मको आश्रय न करनेसे सम्बिद्देवी निर्विशेषभावको उत्पन्न करती हैं एवं उस समय जीव सम्बित् ब्रह्म-ज्ञानको आश्रय करते हैं। अतएव ब्रह्मज्ञान केवल वैकुण्ठकी निर्विशेष आलोचनामात्र है। विशेष धर्म के आश्रयमें सम्बिद्देवी भगवद्भावको प्रकाश करती हैं। उस समय जीवगत सम्बित्द्वारा भगवद्भक्तिकी व्याप्ति ग्रहीत होती है।"

—क्र. स. २।६-९

६. ह्लादिनी शक्तिका क्या कार्य है ?

"ह्लादिनीनाम-संप्राप्ता सैव शक्तिः पराख्यिका ।
महाभावादिषु स्थित्वा परमानन्ददायिनी ।।
सर्वोर्द्ध्व-भावसम्पन्ना कृष्णार्द्धरूपधारिणी ।
राधिकासत्स्वरूपेण कृष्णानन्दमयी किल ।।
महाभावस्वरूपेयं राधा कृष्णविनोदिनी ।
सख्यः अष्टविधा भावा ह्लादिन्या रसपोषिका ।।
तत्तद्भावगता जीव नित्यानन्दपरायणाः ।
सर्वदा जीवसत्तायां भावानां विमला स्थितिः ।।

अर्थात् चित् प्रभावगत पराशक्ति जब ह्लादिनी भावको प्राप्त होती हैं, उस समय वे महाभाव तकके रस-वैचित्र्यको उत्पन्न कर वे स्वयं परमानन्ददायिनी होती हैं। वे ही ह्लादिनी सर्वोर्द्ध्व भावसम्पन्न होकर शक्तिमानकी शक्तिस्वरूपा तदर्द्धरूपिणी राधिका-न सत्तागत अचिन्त्य कृष्णानन्दरूप एक अनिर्वचनीय तत्त्वका विस्तार करती हैं। वे ही कृष्णविनोदिनी राधा महाभावस्वरूप हैं; उन ह्लादिनीकी रस पोषिकारूप आठ प्रकारके भाव हैं, जो राधिकाकी अष्टसखियाँ हैं । जब जीवगत ह्लादिनी शक्ति जीव सत्ताके ऊपर कार्य करती हैं, तब साधुसङ्ग या कृष्ण-कृपाबलसे यदि चित्गत-ह्लादिनी का कार्य थोड़ा भी अनुभूत हो, तो तत्तद्भावगत होकर सभी जीव नित्यानन्दपरायण हो उठते हैं और जीव सत्ता में ही विमल-भावकी नित्यस्थिति हो जाती है।"

—क. स. २।१०.१३

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

(वर्ष ११ संख्या ६-१० पृष्ट २१५ से आगे)

व्रजराजके प्रेममें अनुरक्ता गोपियाँ प्रतिक्षण व्रजराजके आस पास ही मण्डराती रहती थीं। कभी-कभी यमुना पुलिनके कदम्बतलमें पीताम्बर पहने, मोर मुकट धारण किये, वनमालासे विभूषित, मुरली अधर धरे और गोपमण्डलीसे विमण्डित नन्द-नन्दनके दर्शन कर वे भावमग्न हो जाती थीं—अपने तन-मनकी सुधि भूल जाती थीं तो कभी काली, पीली, लाल, श्वेत और धूमरी धेनुओं और वत्सोंके पीछे वनफूलोंके शृङ्गारसे सुसज्जित धूलि धूसरित गोपों के गलोंमें हाथ डाले हास परिहास करते हुए नट-राजका अवलोकन कर अपूर्व आनन्दका अनुभव करती थीं। किसी भी विधिसे हृदयरमणके दर्शन हों, यह प्यास उन्हें सदैव बनी रहती थी । गोप-मण्डलीके साथ कुछ समय खड़े होकर हमसे संभाषण करे, मुरलिका निनाद करें, ऐसी भावनाओं की तरंगें उनके हृदयमें उठती ही रहती थीं। उनके गृहका काम धरा-का-धरा रह जाता था। छोटे-छोटे बच्चोंका, अपने भौतिक पतियोंका तथा अपने पशुओंका भी उन्हें ध्यान नहीं रहता था। उन्होंने साक्षात् पतिरूपसे घट-घट वासी नन्दगोप कुमारका

वरण कर लिया था। समाज एवं लोक लाजसे वे परे हो गई थीं। उठते-बैठते, चलते-फिरते किसी काजके करते समय उन्हीं का ध्यान रहता था, नेत्रोंमें व्रजकिशोरकी छवि ही घूमती रहती थी, हृदय उन्हींका निवासभवन बन गया था। उनके चरण और उनका शरीर उसी ओर खिचा हुआ चला जाता था जिस ओर से मुकुन्दकी मुरलिका गूञ्ज उठती थी। उनके कर व्रजेन्द्रकी सेवा करनेको आतुर रहते थे। कर्ण कुहरोंसे अब सांसारिक बातों के प्रवेश निषिद्ध कर दिये गये थे, वहाँ तो अब मीठी रसभरी गोविन्दके पावन चरित्रकी चर्चा ही प्रवेश कर पाती थी। उनकी रसना रसराजकी गुणावलीका गान कर मतवाली बन गई थी। उनका शरीर सर्वरूपेण सर्वेशके चरणोंमें समर्पित हो चुका था—यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। वह प्रेमस्वरूपा थी अतः प्रेमनिधिमें ही लीन होने को व्यग्र थीं। उनकी लौकिक देहकी कल्पना करना भी अविवेक ही है। वे लौकिक संसारकी नहीं थीं, वे अलौकिक व्रजेन्द्रके व्रजधाम (गोलोक गोकुल) की निवासिनी थी, * जहाँ के पशु-पक्षी, कीट - पतङ्ग, वृक्ष - लताएँ, वापी-कूप तडाग, भूमि, सभी अलौकिक हैं, अप्राकृत हैं और पूर्ण चिन्मय हैं।

व्रजमें जो भी आया, उसने गोपियोंकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उनके पदरजको अपने शीश चढ़ाया, उनके दर्शन कर अपनेको भाग्यशाली माना। ब्रह्मा ने गद्‌गद् होकर कहा "अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः" उद्धवने अपनेको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया और कहने लगे —

वन्दे नन्द व्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥
(भा. १०।४७।६३)

नन्दरायजीके व्रजकी गोपाङ्गनाओंकी पादरज की मैं बारबार वन्दना करता हूँ। अहा ! इन गोपियोंका भगवत्कथा सम्बन्धी गान त्रिलोकीको पवित्र करता है।

इन महाभागा गोपियोंमें अनेक विवाहिता थीं, तो अनेक कुमारिकाएँ भी। वे अहर्निश गोविन्दकी चर्चा सुन उनके गुणों पर मुग्ध हो चुकी थीं। वे ढूँढ रही थी नन्दगोपकुमारकी प्राप्तिका उपाय। धीरे-धीरे वह समय भी आ गया, जो उन्हें अभीष्ट था। मार्गशीर्ष मास—जिसके सम्बन्धमें श्री कृष्णने स्वयं श्रीमुखसे कहा है "मासानां मार्गशीर्षोऽहं", कुमारिकाओंको यह मास साधनाके लिये उचित जान पड़ा। उन्होंने नन्दगोपकुमारकी प्राप्ति के लिये भगवती कात्यायनीका व्रत आरम्भ किया—

हेमन्ते प्रथमेमासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥
(भा. १०।२२।१)

* कृष्णलीला नित्य है। श्रीकृष्ण, उनके माता-पिता सखा-सखियाँ आदि सभी परिकर नित्य हैं। श्रीकृष्ण अब भी नित्य वृन्दावनमें नित्य परिकरोंके साथ विहार करते हैं। अप्राकृत नित्य जगत्‌की नित्य लीला आदि कथाओंको प्राकृत जगतमें व्यक्त करते या कहते समय प्राकृत कालके मल रूप भूत-भविष्यका प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। शुद्ध भक्तगण प्राकृत काल-मलको दूर कर शुद्ध लीला कथामें प्रवेश करनेकी चेष्टा करेंगे। —सम्पादक

हेमन्त ऋतुके प्रथम मास मार्गशीर्षमें नन्दराय जीके व्रजकी कुमारियोंने हविष्यान्न खाकर कात्यायनीके पूजनका व्रत धारण किया। क्योंकि कुमारिकाएँ व्रजेन्द्रकी गुणगणावलि, उनकी रूप-कान्ति, उनकी विविध लीलाएँ और हास-परिहाससे अतिशय आकर्षित हो चुकी थीं। अब उन्होंने श्री कृष्णसे मिलनेका साधन—त्याग, तपस्या, पूजन, भजन, प्रातः स्नान आदि आरम्भ कर दिया—

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे।
कृत्वाप्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम्॥
गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः।
उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः॥
कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः

(भा. १०।२२।३-४)

—वे अरुणोदयके समय यमुना-जलमें स्नान कर निकट ही बालूकी देवी-मूर्त्ति बनकर उनको सुगन्धित गंध-पुष्प, धूप,दीप,नैवेद्य,फल और अक्षत भेंट करके ऊँच-नीच संप्राप्त सामग्रियोंसे उनका पूजन करतीं और अन्तमें प्रणत होकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करतीं—"हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे अधीश्वरि, हे देवि ! हमें नन्दराय के पुत्र श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्रदान करें। हम आपका प्रणाम करती हैं।" वे पूरे एक मास तक नियमपूर्वक व्रत धारण कर कात्यायनीका विधिपूर्वक पूजन करती हुईं वही एक ही प्रार्थना प्रतिदिन करती रहीं। अन्तमें साधनकी पूर्त्तिका समय निकट आया।

एक दिन पूर्ववत् यमुनाके तीरपर अपने-अपने वस्त्रोंको उतार कर वे सब व्रजकुमारिकाएँ श्रीकृष्ण का गान करती हुईं नंगी ही जलमें क्रीड़ा करने लगीं। इधर ये व्रजकुमारियाँ जल-क्रीड़ामें रत थीं और उधर —

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये॥
तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः।
हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह॥

(भा. १०।२२।८-९)

योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान श्रीकृष्णसे गोपकुमारियोंकी अभिलाषा छिपी न रही। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ उन कुमारियोंकी निर्मल साधनाका फल प्रदान करनेके लिये वहाँ यमुना तट पर पधारे।

उन्होंने अकेले ही उन गोपियोंके सारे वस्त्र उठा लिये और बड़ी फुर्तीसे एक कदम्ब वृक्षके ऊपर चढ़ गये। साथी ग्वाल-बाल ठठा-ठठा कर हँसने लगे और स्वयं कृष्ण भी हँसते हुए गोपियोंसे हँसी की बात करने लगे। अब गोपियोंका अपने वस्त्रोंका ध्यान आया, वे गिड़गिड़ा कर अपना वस्त्र माँगने लगीं। उस समय कृष्णने हँसकर कहा—अबलाओं ! यदि चाहो तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो। मैं सच कहता हूँ, कोई परिहासकी बात नहीं है, क्योंकि तुम व्रतके कारण दुबली-पतली हो गयी हो। मैंने आजतक कभी झूठ नहीं बोला है—इस बातको सभी जानते हैं। हे सुन्दरियों ! चाहे एक-एक आकर ले जाओ अथवा सभी एक साथ ही आकर ले जाओ।

तस्य तत् ध्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ।
व्रीड़िताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥

श्रीकृष्णकी ऐसी हँसी-मसखरी देखकर गोपियाँ प्रेममें मग्न हो गयीं। वे तनिक सकुचा कर आपसमें एक दूसरीको देखने और मुसकराने लगीं। लज्जाके मारे बाहर नहीं निकलीं।

वे गले तक ठण्डे जलमें खड़ी शीतके कारण काँप रही थीं। उस समय उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—

मानयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ।
जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥
श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ।
देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥
(भा. १०।२२।१४-१५)

प्यारे कृष्ण ! तुम ऐसी अनीति न करो। हम जानती हैं कि तुम नन्द बाबाके लाड़ले लाल हो। हमारे प्यारे हो। सारे व्रजवासी तुम्हारी सराहना करते हैं। देखो, हम जाड़ेके मारे ठिठुर रही हैं। तुम हमारे वस्त्र दे दो।

श्यामसुन्दर ! हम आपकी दासियाँ हैं। तुम जो कुछ कहोगे, हम वही करेंगी। हे धर्मज्ञ ! तुम वस्त्र दे दो, नहीं तो हम जाकर नन्दबाबासे कह देंगी।

श्रीकृष्ण उनकी प्रेमभरी और आक्रोशपूर्ण बातोंको सुनकर कहने लगे—

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ।
अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥

कुमारियों ! तुम्हारी मुसकान पवित्रता और प्रेमसे भरी है। देखो, जब तुम अपनेको मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञाका पालन करना चाहती हो, तो यहाँ आकर अपने वस्त्र ले जाओ।

गोपियाँ समझ गईं कि श्रीकृष्ण वैसे ही वस्त्र देनेवाले नहीं हैं। अतः आपसमें परामर्श करके शीतसे काँपती हुई अपने दोनों हाथोंसे अपने गुह्याङ्गोंको ढक कर जलसे बाहर निकलीं। उनका शुद्ध भाव देख कर भगवान् प्रसन्न हुए और उनको अपने पास आयी देख कर उनके वस्त्र अपने कन्धे पर रख कर मन्द-मन्द मुसकराते हुए प्रीति सहित बोले—

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता
व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः
कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥
(भा. १०।२२।१९)

अरी गोपियों ! तुमने अपना व्रत अच्छी तरह निभाया है—इसमें संदेह नहीं है। परन्तु इस अवस्थामें वस्त्रहीन होकर तुमने जलमें स्नान किया है। इससे तो जलके अधिदेवता वरुणके तथा यमुनाके प्रति तुम्हारा अपराध हुआ है। इस विषय में श्रुतिकी यह आज्ञा है—

"अप्स्वग्नि र्देवताश्चानुतिष्ठन्ति अतोनाप्सु मूत्र पुरीषं कुर्यान्निष्ठीवेन्नविवसनस्नायात् गुह्यो वा एषो अग्निरिति श्रुतेः।"

अर्थात् जलमें अग्निदेव निवास करते हैं। वे जलमें गुप्तरूपसे रहते हैं। इसलिये जलमें मूत्रत्याग पुरीषोत्सर्ग (मल-त्याग) थूकना तथा नग्न स्नान नहीं करना चाहिये।

अतः हे कुमारियों ! इस पापकी निवृत्तिके लिये तुम सिरसे हाथ जोड़ कर तथा झुक कर उनको प्रणाम करो, फिर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

इत्यच्युतेनाभिहिता व्रजबाला
मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम्।
तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां
साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग् यतः॥
(भा. १०।२२।२०)

व्रजललनाओंने भगवान्‌की बात सुनकर नग्न-स्नान करनेसे व्रतभंग समझ कर उस व्रतकी परि-पूर्णताके लिये सब कर्मोंके फल रूप श्रीकृष्णको प्रणाम किया। क्योंकि वे ही निखिल पापोंके शोधक हैं।

उनको इस प्रकार अपनी आज्ञानुसार प्रणाम करते और प्रणत हुए देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये।

इत्थं प्रलब्धाबलया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यधाप्यमुं
ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः॥
(भा. १०।२२।२२)

भगवान्‌ने गोपियोंसे छलभरी बातें की, उनकी लज्जाका अपहरण किया, हँसी की, उन्हें कठपुत-लियोंके समान नचाया,उनके वस्त्र हर लिये, तो भी वे श्रीकृष्ण पर तनिक भी रुष्ट नहीं हुईं; क्योंकि वे प्यारेके संगसे आनन्दमें मग्न हो गयी थीं। प्रियतमके संगसे वे ऐसी मुग्ध हो गईं—उनका चित्त ऐसा हृत हो गया था कि वे अपने-अपने वस्त्रोंके धारण करनेके पश्चात् भी वहाँसे एक पग भी चल न सकीं। बल्कि अपने प्रियतमके समागमके लिये सजधज कर वे उन्हीं की ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं।

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया।
धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः॥
संकल्पो विदितः साध्वो भवतीनां मदर्चनम्।
मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति॥
न मय्यर्पितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥
याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः॥
(भा १०।२२।२४-२७)

भगवान् दामोदरने उनके व्रतका संकल्प जान लिया कि इन्होंने मेरे चरण-स्पर्शकी इच्छासे व्रत किया है। इसलिये वे गोपियोंसे कहने लगे—हे साधु कुमारियों ! मैंने तुम्हारा संकल्प जान लिया है। यद्यपि लज्जाके कारण स्पष्टरूपसे तुम मुझसे नहीं कह रही हो, जिसकारणसे तुमने मेरा पूजन किया है। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा; क्योंकि उसमें मेरी सम्मति है। जिन्होंने मुझमें चित्त लगाया है, उनकी इच्छा पूर्ण होनेपर फिर उनके हृदयमें दूसरी किसी भी प्रकारकी इच्छाओंका जन्म नहीं होता; प्रत्युत वे सभी शान्त हो जाती हैं। जैसे भुना हुआ या औंटाया हुआ बीज फिर दूसरे बीज को पैदा नहीं करता। हे अबलाओं ! तुम व्रजमें जाओ, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। हे सतियों ! आगामी शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें तुम मेरे साथ विहार करोगी।

भगवान् की यह आज्ञा सुनकर वे गोपकुमारियाँ उनके चरणारविन्दों का ध्यान करती हुई बड़े कष्ट से व्रजमें लौटीं।

इस परमपावन चीरहरणके रहस्यको न जान कर विकृत मस्तिष्क अपने हृदयमें अन्यथा भावना ला सकता है। भौतिकवादी जीव पार्थिव जगतकी लीला समझ दोष दृष्टि कर सकता है। परन्तु उसे ध्यानमें रखना चाहिये यह श्रीकृष्ण-लीला पार्थिव राज्यकी लीला नहीं है। यह नित्य वृन्दावनधाममें होनेवाली परम पुरुषकी लीला है। योगेश्वरेश्वरकी लीला है। हृदयवल्लभ देह-देहमें निवास करने वाले परम परमात्माकी लीला है। उस समय श्रीकृष्ण की अवस्था भी १० वर्ष की थी, जो एक पवित्र अवस्था थी। हम देहात्मवादी बद्धजीव हैं। हमारे मनमें देहकी बात ही आती है। हम अपने समान ही सबको देखते हैं। भगवान्के अलौकिक सामर्थ्यको भूल जाते हैं।

इस लीलाके द्वारा आचार-व्यवहार, धर्मके सुधारका भी श्रीकृष्णने प्रयत्न किया है। क्योंकि श्रीकृष्ण नीति, धर्म, सदाचार, व्यवहारका सुधार करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। भगवान् धर्म संस्थापक थे। अपने व्रजमें वह शुद्ध सात्विक वायुमण्डल ही देखना चाहते थे। जिसमें थोड़ी भी कलुषताको स्थान न हो, वे ऐसी पवित्रताका सभी के हृदयमें सृजन करना चाहते थे। सांसारिक वासनाओंसे निर्मुक्त करनेमें वह दृढ़ संकल्प थे। गोपियोंके माधुर्य भावके साथ-साथ हमें द्विजपत्नियोंके माधुर्य भावके भी दर्शन होते हैं। उनका अनुराग, त्याग, समर्पण-अपूर्व है। उनका कृष्ण प्रेम भी अवर्णनीय है।

कथा प्रसंग इस प्रकार है। एक दिन वनमें खेलते-कूदते गायोंको चराते हुए गोपोंको भूखने आ सताया। वे क्षुधा-शान्तिके लिये राम और कृष्ण दोनों भाइयोंसे कहने लगे। तब श्रीकृष्णने अपने भक्त ब्राह्मणोंकी स्त्रियों पर प्रसन्न होने या उनपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे अपने सखाओंसे कहा—मेरे प्यारे मित्रों! यहींसे थोड़ी दूरीपर भाण्डीरवनमें ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं। उनसे जाकर मेरा नाम और बड़े भाई बलरामजीका नाम लेकर उनसे भोजनकी प्रार्थना करना। शीघ्र ही भगवान्की आज्ञासे गोप वहाँ गये और उनके सामने जाकर भोजनकी याचना की। किन्तु कर्ममें आसक्त स्वर्गकामी ब्राह्मणोंने उनकी बातें नहीं सुनीं; क्योंकि वे मूर्ख अपनेको ज्ञानी समझने वाले थे। इसीसे वे श्रीकृष्णका महत्व न समझ सके—

देशः कालः पृथग् द्रव्यं मंत्र-तंत्रर्त्विजोऽग्नयः।
देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः॥
तं ब्रह्म परमं साक्षाद् भगवन्तमधोक्षजम्।
मनुष्यदृष्टया दुष्प्रज्ञा सर्वात्मानो न मेनिरे॥

(भा, १०।२३।१०-११)

देशकाल, पुरोडाशादिक द्रव्य, मन्त्र प्रयोग, ऋत्विज, अग्नि देवता, यजमान, यज्ञ, धर्म, ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन इन्द्रियातीत साक्षात् परब्रह्म स्वयं भगवान्को मूर्ख घमण्डियोंने नहीं पहिचाना, क्योंकि वे उनको मनुष्य ही जानते थे।

जब उन ब्राह्मणोंने गोपोंका सत्कार करना तो

दूर रहा, सीधे ढङ्गसे बात भी नहीं की, तो उन्होंने लौट कर उदास होकर सारी बातें बतायीं ।

भगवान् गोपोंकी बातें सुनकर हँसे और कहने लगे कि संसारमें असफलता तो बार-बार होती ही है, उससे निराश नहीं होना चाहिये । बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है । अब तुम मेरे कहनेसे एक बार फिर वहीं जाओ और जाकर पत्नीशालामें बैठी उनकी स्त्रियोंको सूचना दो कि राम और श्याम पधारे हैं, वे भूखे हैं। वे तुम्हारी इस बातको सुनकर तुम्हें मुँह माँगा अन्न देंगी । क्योंकि उनकी बुद्धि मुझमें लगी हुई है ।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर ग्वाल - बाल पुनः यज्ञशालामें पहुँचे । इस बार उन्होंने ब्राह्मण पत्नियोंको प्रणाम कर कहा—'देवियों ! श्रीकृष्ण यहाँसे थोड़ी ही दूर पर आये हुए हैं । उन्होंने ही हमें आपके पास भेजा है । वे ग्वालबाल और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए इधर बहुत दूर आ गये हैं । इस समय उन्हें और उनके साथियोंको बड़ी भूख लग रही है । आप उनके लिये कुछ भोजन दें ।

श्रुत्वाच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ।
तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसम्भ्रमाः ॥
चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥
निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ।
भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥
(भा. १०।२३।१८-२०)

श्रीकृष्ण निकट पधारे हैं, यह बात सुनते ही द्विजपत्नियाँ बड़ी उतावली हो गयीं । उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शनोंकी उत्कण्ठा लग गयी, क्योंकि उनका मन भगवान्‌की कथाओंसे पहले ही हरण हो चुका था । इसलिये वे शीघ्र ही भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य—चारों प्रकारके बहुत ही सुस्वादु और सौरभ से युक्त अन्न-व्यञ्जन पात्रोंमें भरकर सब स्त्रियाँ श्यामसुन्दरके पास चलीं, ठीक वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्रकी ओर बड़े वेगसे बिना विघ्न-बाधा माने दौड़ती हैं । यद्यपि उनके पति, भाई, बन्धुओं और पुत्रोंने निषेध किया, परन्तु वे रुकने क्यों लगीं । उनका तो दीर्घ कालसे उत्तम श्लोक भगवानमें अन्तःकरण लगा हुआ था । उन्होंने अशोक वृक्षके नव-पल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके तीर पर उपवन में गायोंसे परिवेष्टित होकर श्रीबलदेवजीके साथ विचरते हुए कृष्णको देखा ।

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेशमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालक-कपोलमुखाब्जहासम् ॥
प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरै-
र्यस्मिन् निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।
अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं
प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥
(भा. १०।२३।२२-२३)

अहा ! क्या ही सुन्दर रूप है; उनके सुन्दर साँवले शरीर पर सुनहला पीताम्बर झिलमिला रहा है । गलेमें वनमाला लटक रही है । मस्तक

पर मोरमुकुट सुशोभित है। अंग-अंगमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रखी है। नये-नये कोपलों के गुच्छे शरीरमें लगाकर नटसा वेष बना रखा है। एक हाथ अपने सखा ग्वाल-बालके कन्धेपर रखे हुए है और दूसरे हाथसे कमलका फूल नचा रहा है। कानोंमें कमलके कुण्डल हैं, कपोलों पर घुँघराली अलकें लटक रही हैं और मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा हैं।

गोपियोंने अब तक अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके गुण और मधुर लीलाएँ अपने कानोंसे सुन-सुन कर अपने श्रवणेन्द्रियको सार्थक बनाया था और उसके द्वारा उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेममें रंग डाला था, उनका चित्त श्रीकृष्णपर आसक्त हो चुका था। अब नेत्रके मार्गसे उन्हें भीतर ले जाकर बहुत देर तक उनका आलिङ्गन कर उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की—ठीक वैसे ही जैसे जीवात्मा भगवानके भीतर प्रविष्ट होकर परमात्मा द्वारा आलिङ्गित होकर इतना आनन्दविभोर हो जाता है कि वह बाहरी सब कुछ भूल जाता है और उसकी सारी जलन मिट जाती है।

समस्त प्रकारकी कामनाओंको छोड़कर प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके दर्शनोंकी इच्छासे आयीं हुईं द्विजपत्नियोंको देखकर बुद्धिके साक्षी भगवान श्रीकृष्णने उनसे हँसते-हँसते कहा—

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम्।
यन्नो विदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः॥
नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः।
अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा॥
प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः।
यत्सम्पर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः॥
(भा० १०।२३।२५-२७)

महाभाग्यवती देवियों! तुम्हारा स्वागत है। आओ, बैठो। कहो, हम तुम्हारे लिये क्या करें। तुमलोग हमारे दर्शनकी इच्छासे आयी हो, यह तुम्हारे जैसे प्रेमपूर्ण हृदयवालोंके लिये उचित ही है। इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सच्ची भलाई समझनेवाले सुबुद्धिमान मनुष्य मुझको ही आत्माका आत्मा और परमप्रिय जानकर मेरी फलाभिसंधानरहित निरन्तर यथार्थ साक्षात् भक्ति करते हैं, क्योंकि आत्मा ही सबसे अधिक प्रिय है। देखो, प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्त्री, पुत्र, धन आदि ये सब जिनके सम्बन्धसे स्थिर लगते हैं, उस आत्मा—मुझ कृष्णसे बढ़कर कौन प्यारा हो सकता है।

द्विजपत्नियों! अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं। अतः अब तुमलोग अपनी यज्ञशालामें लौट जाओ। तुम कृतार्थ हो चुकी। तुम्हारे पति गृहस्थ हैं। तुम्हारे जाने पर ही वे तुम्हें साथ लेकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे।

श्रीकृष्णके इस प्रकारके रूखे वचन द्विजपत्नियों को अच्छे नहीं लगे। वे कहने लगीं—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम्।
प्राप्ता वयं तुलसिदामपदावसृष्टं
केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून्॥
गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा
न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये।

तस्माद् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो
नान्या भवेद् गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥
(भा. १०।२३।२९-३०)

हे व्रजराज ! आपको ऐसी निष्ठुरतापूर्ण बातें नहीं करनी चाहिए । श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एकबार भगवानको प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता है । आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये। हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उलंघन करने आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंमें गिरी हुई तुलसीकी माला अपने केशोंमें धारण करें। स्वामी! अब हम घरको जाँय, तो न तो हमारे पति हमें स्वीकार करेंगे,न माता-पिता ही और न पुत्र, भाई -बन्धु, न सुहृद ही ग्रहण करेंगे; फिर भला दूसरे कौन स्वीकार करेंगे ? इसलिये हे वीर शिरोमणि! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं । हमें और किसीका सहारा नहीं है । इसलिये अब हमें दूसरों की शरणमें न जाना पड़े,ऐसी व्यवस्था कीजिए ।

इस प्रकार बार-बार हठ करने पर भी भगवान ने यज्ञपत्नियोंको प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—देवियों ! तुमलोग मेरी आज्ञासे अपने पतियोंके पास लौट जाओ । तुम्हारे पति तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे, न भाई, न माता-पिता, न पुत्र और न दूसरे लोग ही तुम्हें कुछ कहेंगे । क्योंकि सभी देवता मेरी आज्ञाका पालन करते हैं । फिर भी द्विजपत्नियाँ वहाँ से नहीं हटीं और कहने लगीं कि हम आपको छोड़ नहीं सकतीं । तब भगवान्ने कहा—इस संसारमें अंग-संग ही मनुष्योंमें मेरी प्रीति या अनुरागका कारण नहीं है । अतः तुम लोग लौट जाओ और अपना मन मुझमें लगाओ । ऐसा करनेसे तुम शीघ्र ही मुझे प्राप्त होओगी । अन्तमें बहुत ही व्याकुल होकर द्विजपत्नियोंने प्रस्थान किया । ब्राह्मणोंने बिना किसी दोष दृष्टिके अपनी पत्नियों के साथ यज्ञ समाप्त किया ।

यज्ञशालामें एक ब्राह्मणने अपनी स्त्रीको रोक लिया । उस ब्राह्मणपत्नीने जैसा भगवान्का स्वरूप सुना था, वैसा ही ध्यान करके हृदयमें भगवान्का आलिङ्गन कर कर्मबन्धनमें बन्धे देह—कर्मद्वारा प्राप्त देहका परित्याग कर शुद्ध सत्त्वमय अप्राकृत शरीर से भगवान्की सन्निधि प्राप्त की ।

ब्राह्मणोंको अन्तमें ज्ञान हुआ और वे अपनेको धिक्कारने लगे—

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ।
आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥
धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥
(भा. १०।२३।३८-३९)

अपने स्त्रियोंकी भगवान् कृष्णमें अलौकिक प्रेम-भक्ति देख और अपनेको उससे रीता देख संतप्त हो स्वयंको धिक्कारने लगे–शौक्र,सावित्र और दैक्ष्य तीन प्रकारके हमारे जन्मको धिक्कार है । हमारी विद्याको धिक्कार है, व्रतको धिक्कार है, बहुज्ञता को धिक्कार है, कुलको धिक्कार है, कर्म कुशलता को धिक्कार है, जो हम भगवानसे विमुख हैं । योगियोंको भी मोहित करने वाली भगवानकी मायासे हम मोहित हो गये हैं । अहो, हमारी, स्त्रियोंकी कैसी सुदृढ़ भक्ति है, जिन्होंने गृह रूपी मोह-बन्धनको काट दिया ।

देखो, न इनका न द्विजाति-संस्कार है, न गुरुके समीप निवास है, न आत्म-विचार है, न शौच है, न नित्य अनुष्ठान ही है; फिर भी भगवान् योगेश्वर उत्तमश्लोकमें जैसी इनकी दृढ़ा भक्ति है, श्रीकृष्णके प्रति दृढ़ अनुराग है वैसा संस्कार वालोंका नहीं।

इधर भगवान् श्रीकृष्णने यज्ञ-पत्नियों द्वारा लाये अन्नसे पहले गोपोंको भोजन कराया, फिर आपने किया।

(क्रमशः)

—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न

प्रचार-प्रसंग

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें १ वैशाख (१५ अप्रैल) को श्रीचैतन्यलीलाके व्यासदेव, 'श्रीचैतन्यभागवत' ग्रन्थके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव, ६ वैशाख, २० अप्रैल को श्रीगौरशक्ति श्रीश्रीगदाधर पण्डितका आविर्भाव महोत्सव तथा २१ वैशाख (५ मई को) श्रीनृसिंह चतुर्दशीका व्रत खूब धूमधामके साथ सम्पन्न हुए हैं।

गत ६ वैशाख, अक्षय तृतीयाके दिन समितिके सभी मठोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रतिष्ठा-दिवस मनाया गया है। समितिके प्रतिष्ठाता एवं नियामक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने आजसे २५ वर्ष पूर्व कलकत्ताके ३३।२ बोसपाड़ा लेन, बागबाजारमें आजके ही दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी प्रतिष्ठा कर वहीं से जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराजके अप्रकटके पश्चात श्रीचैतन्यमहाप्रभुद्वारा प्रचारित शुद्धाभक्तिका प्रचार आरम्भ किया। आज भारतके सभी भागोंमें समितिके मठ स्थापित हैं तथा वहींसे सर्वत्र ही विराट रूपमें शुद्ध भक्तिका प्रचार हो रहा है।

साधारण लोगोंमें ऐसा व्यापक भ्रम चल रहा है कि वेदान्त कहनेसे शंकराचार्यके मतका ही बोध होता है। परन्तु यथार्थमें वेदान्तमतका तात्पर्य व्यासदेवके मतसे है, जिसे उन्होंने 'वेदान्तसूत्र' और उसके भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतमें प्रतिपादित किया है। आचार्य शङ्कर और श्रीव्यासदेवके विचार एक नहीं; बल्कि पृथक्-पृथक् हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत श्रीगौड़ीय वैष्णवगण ही श्रीव्यासानुगत सिद्धान्तको मानने वाले हैं। इसलिये इनका विचार ही यथार्थमें वेदान्तमत है। इसी विषयको स्पष्ट करनेके लिये श्रील आचार्य देवने इस समितिका नाम श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति रखा है। इसके द्वारा ही संसारमें यथार्थ वेदान्तमत--शुद्धाभक्तिका प्रचार होता है।

—प्रकाशक

छप रहा है !

छप रहा है !!

जैवधर्म

हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भक्ति सम्बन्धित सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता, श्रीचैतन्य महाप्रभुके पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' (जीवका धर्म) का हिन्दी-संस्करण छप रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

'जैवधर्म' कहनेसे जीव-सम्बन्धी धर्म या जीवके धर्मका बोध होता है। बाह्यदृष्टिसे विभिन्न देशोंकी विभिन्न जातियों एवं विभिन्न वर्गोंके मनुष्यों, पशु-पक्षियों, कीट-पतङ्गों तथा दूसरे-दूसरे विभिन्न प्राणियोंके धर्म भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होनेपर भी अखिल ब्रह्माण्डोंके निखिल जीवसमूहका नित्य और सनातन-धर्म एक है। जैवधर्म-ग्रन्थमें इसी सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य-धर्म—'जैवधर्म' का हृदयग्राही साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। इसमें वेद, वेदान्त, उपनिषद, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, इतिहास, पंचरात्र' षट्सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत, भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणि आदि सद्ग्रन्थोंके अतिशय गम्भीर और गहन विषयोंका सार सरस, सरल और उपन्यास-प्रणालीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है।

इस ग्रन्थमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजनके रूपमें ग्रथित भगवतत्त्व, जीवतत्त्व, शक्ति-तत्त्व, जीवकी बद्ध और मुक्त दशाएँ, कर्म, ज्ञान और भक्तिका स्वरूप एवं तुलनात्मक विचार, वैधी-रागानुगा भक्तिका सिद्धान्तपूर्ण सरस विचार-वैशिष्ट्य तथा श्रीनाम-भजनकी सर्वश्रेष्ठता आदि विषयोंका अपूर्व मार्मिक विवेचन है।

हिन्दी जगतमें अबतक वैष्णव-धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका तुलनात्मक बोध करानेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर एवं सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका अभाव था। "जैवधर्म" हिन्दी जगत्में इस अभावकी पूर्त्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें।

श्रीभागवत-पत्रिकाके नियम

१.—"श्रीभागवत-पत्रिका" प्रतिवर्ष बारह महीनोंमें बारह संख्याओंमें प्रकाशित होंगी । इनका नया वर्ष सौर ज्येष्ठसे आरम्भ होकर सौर वैशाखमें समाप्त होता है । प्रति महीनेकी पूर्णिमा या अन्तिम दिवसके बीच ही प्रकाशित होंगी ।

२—श्रीभागवत-पत्रिकाकी डाक-व्यय सहित वार्षिक भिक्षा ४), षाण्मासिक २॥) और प्रति संख्या ॥) है । भिक्षा अग्रिम जमा देनी होगी । वी० पी० द्वारा मँगानेसे डाक-व्यय अलग देना होगा ।

३—श्रीपत्रिकाके प्रचलित वर्षके किसी भी समयमें प्रथम संख्यासे ग्राहक बन सकते हैं । पुरानी संख्याओंके लिये प्रकाशकके साथ पृथक् व्यवस्था करनी चाहिये ।

४—ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखना चाहिये । सर्वदा ग्राहक-संख्याका उल्लेख होना आवश्यक है । पत्रके उत्तरके लिये जवाबी पोस्टकार्ड देना चाहिये । श्रीपत्रिकाकी कोई संख्या नहीं मिलनेपर अगले महीनेके १५ दिनके भीतर ही सूचित करना चाहिये ।

५—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आचरित और प्रचारित शिक्षा या शुद्ध-भक्तिके सम्बन्धमें निरपेक्ष लेखादि भेजनेसे आदर-पूर्वक ग्रहण किये जाते हैं । ईर्ष्यामूलक आक्रमणसूचक लेखादि श्रीपत्रिकामें प्रकाशित न होंगे । सत्-समालोचना सर्वदा आदरणीय है । लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है । अमनोनीत लेख लौटाये नहीं जाते । लेखोंमें प्रकाशित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है ।

६—कोई जानकारी अथवा रुपये-पैसे भेजना हो तो—'कार्याध्यक्ष' अथवा 'प्रकाशक', श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय, कंसटीला, पो०—मथुरा (मथुरा) इ० प्र० के नाम से भेजने चाहिये ।

७—विज्ञापनोंकी जानकारीके लिये कार्याध्यक्ष के निकट पृथक् पत्र व्यवहार करना चाहिये ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित शुद्धभक्ति ग्रन्थावली

1—SHRI CHAITANYA MAHAPRABHU (His Life and precepts) By Thakur Bhakti Vinode. Price Re. 1/- only

२—सहजिया-दलन (हिन्दी)—श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर और श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके बङ्गलाके लेखोंका अनुवाद । भिक्षा ·४४ न.पै.

३—जैव-धर्म (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर । भिक्षा ५·०० रुपये

४—प्रेम-प्रदीप (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर । भिक्षा १·२५ न.पै.

५—प्रबन्धावली (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर । भिक्षा १·५० न.पै.

६—श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ २ खंड (बङ्गला कीर्तन-संग्रह) । भिक्षा १·७५ न.पै.

७—श्रीनवद्वीप-भावतरङ्ग (बङ्गला) लेखक श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर । भिक्षा ·२५ न.पै.

८—श्रीदामोदराष्टकम् (संस्कृत) श्रीसनातन गोस्वामी की टीका आदिके साथ । भिक्षा ·५० न.पै.

९—श्रीरूपानुग-भजन-सम्पत् (बङ्गला) भिक्षा ·६२;

१०—श्रीगौड़ीय-पत्रिका (बङ्गला पारमार्थिक मासिक) वार्षिक भिक्षा रु० ४·००

११—श्रीभागवत-पत्रिका (हिन्दी पारमार्थिक मासिक) वार्षिक भिक्षा रु० ४·००

१२—श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा (बङ्गला) लेखक—श्रीभक्तिविनोद ठाकुर । भिक्षा १·५० न० पै०